पीठः- आर.एन. मित्तल, न्यायाधिपति

पोस्ट ग्रैजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च, चंडीगढ़- अपीलार्थी

बनाम

डॉ. जे.एस. गुप्ता और अन्य,- प्रत्यर्थी

नियमित प्रथम अपील संख्या 93 of 1974

28 जून, 1983

संविदा अधिनियम (IX of 1872)धारा 74- पंजाब सिविल सेवा नियम, खंड । भाग-I-नियम 1.3- कर्मचारी द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए एक संस्थान की सेवा करने के लिए निष्पादित बंध-पत्र- सेवा की संविदा के उल्लंघन के मामले में पूर्व-अनुमानित नुकसान की मात्रा को निर्दिष्ट करने वाला बंध-पत्र- संस्थान में सेवा न देकर संविदा का उल्लंघन करने वाला कर्मचारी- ऐसी संस्था- क्या बंध-पत्र में निर्धारित नुकसान की वसूली करने की हकदार है- कर्मचारी पर लागू पंजाब सिविल सेवा नियम- संस्थान- क्या कर्मचारी को बंध-पत्र निष्पादित करने के लिए मजबूर कर सकती है- किसी व्यक्ति द्वारा संस्थान की ओर से दायर किया गया मुकदमा जो विधिवत अधिकृत नहीं है- दावा दायर करने के कार्य को एक सक्षम निकाय द्वारा दावा दायर करने की परिसीमा समाप्त होने के पश्चात् अनुसमर्थित किया गया- ऐसा अनुसमर्थन- क्या पूर्वव्यापी रूप से काम करता है।

अभिनिर्धारित किया गया कि यदि किसी संविदा के पक्षों ने संविदा के उल्लंघन पर दंडात्मक राशि को देय होने के रूप में नामित किया है, तो दंडात्मक राशि से अधिक नहीं होने वाले वास्तविक नुकसान की वसूली की जा सकती है। दूसरी ओर, यदि उनके द्वारा राशि को नुकसान के निश्चित आकलन के रूप में निर्धारित किया गया है ताकि भविष्य में इसका पता लगाने में किसी भी कठिनाई से बचा जा सके, तो इस प्रकार नामित राशि की वसूली की जा सकती है। संविदा में जुर्माना या परिनिर्धारित क्षति शब्द का उपयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए निर्णायक कारक नहीं है कि दावा की गई राशि जुर्माना या

परिनिर्धारित क्षति है। प्रत्येक मामले में उस मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस तरह के प्रश्न का निर्धारण किया जाना चाहिए। आम तौर पर यह देखा जाता है कि संविदा के कुछ मामलों में न्यायालय के लिए नुकसान का अनुमान लगाना संभव नहीं है, जबकि कुछ मामले ऐसे हैं जिनमें नुकसान की गणना प्रसिद्ध सिद्धांतों के अनुसार की जा सकती है। पहले के मामलों में, पक्षों द्वारा नामित राशि, यदि यह नुकसान के वास्तविक पूर्व-आकलन को दर्शाती है, तो इसे उचित मुआवजे के रूप में माना जा सकता है, जबकि बाद के मामलों में, नुकसान को साबित करने की आवश्यकता होती है। इसलिए संस्थान के साथ एक प्राध्यापक का जुड़ाव एक बड़ी संपत्ति है और उसके जाने के बाद मुआवजे की कोई भी राशि नुकसान की भरपाई नहीं कर सकती है। इस प्रकार, बंध-पत्र में उल्लिखित राशि को अत्यधिक या अनुचित नहीं कहा जा सकता है।

(जिम्मन 10 और 12).

पंजाब सिविल सेवा नियम, खंड I, भाग I के नियम 1.3 में यह उपबंध किया गया है कि जब सक्षम प्राधिकारी की राय में सेवा की किसी शर्त के संबंध में नियमों से असंगत कोई विशेष उपबंध अपेक्षित है तो प्राधिकारी कर्मचारी के साथ उस संबंध में करार कर सकता है। इस प्रकार सक्षम प्राधिकारी, सेवा की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, एक समझौता कर सकता है जो नियमों के साथ असंगत भी हो सकता है। इसलिए, संस्थान के कर्मचारी को संस्थान में सेवा के लिए बंध-पत्र निष्पादित करने के लिए कहा जा सकता है।

(जिम्मन 21)

अभिनिर्धारित किया कि एक अभिकर्ता अपने प्रतिनिधि की अनधिकृत कार्रवाई को अनुसमर्थित कर सकता है। हालांकि, यदि अनुसमर्थन परिसीमा से परे है, तो यह परिसीमा के दोष को ठीक नहीं कर सकता है।

(जिम्मन 19)

उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, चंडीगढ़, के न्यायालय के निर्णय और डिक्री दिनांक 29 नवंबर, 1973 से नियमित प्रथम अपील, जिसमें वादी के वाद को खारिज किया गया और पक्षकारों को अपना खर्चा स्वयं वहन करने के लिए छोड़ दिया गया।

उपस्थित:- अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता श्री एस.के. शर्मा।

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता श्री आर.के. अग्रवाल।

निर्णय

राजेंद्र नाथ मित्तल, न्यायाधिपति

(1) यह अधीनस्थ न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, चंडीगढ़, के निर्णय और डिक्री दिनांक 29 नवंबर, 1973 के विरुद्ध प्रथम अपील है, जिसके द्वारा वादी का वाद खारिज कर दिया गया था।

(2) संक्षेप में, तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी संख्या 1 वादी के यहाँ नेत्र विज्ञान के सह-प्राध्यापक के रूप में कार्य कर रहा था। उन्होंने जुलाई, 1969 में विदेश जाने के लिए चार महीने की छुट्टी के लिए आवेदन किया, जो उन्हें एक बँधपत्र के निष्पादन पर स्वीकृत किया गया था कि वह छुट्टी की समाप्ति के बाद चार साल की अवधि के लिए संस्थान की सेवा करेंगे या संस्थान को 45,000 रुपए की राशि अदा करेंगे। नतीजतन, उन्होंने व प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने प्रतिभूति के रूप में, वादी के पक्ष में बँधपत्र दिनांकित 5 जुलाई, 1969 निष्पादित किया। यह अभिकथित किया गया कि प्रतिवादी संख्या 1 ने छुट्टी की समाप्ति पर अपने ड्यूटी को फिर से शुरू नहीं किया। इसलिए संस्थान द्वारा 45,000 रुपये की वसूली के लिए दावा किया गया।

(3) प्रतिवादीगण ने वाद का विरोध किया और अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथित किया कि वाद विधिवत अधिकृत व्यक्ति द्वारा दायर नहीं किया गया है, कि वादी कानूनी रूप से प्रतिवादीगण से बँधपत्र प्राप्त नहीं कर सकता था और प्रतिवादी संख्या 1 के छुट्टी की समाप्ति के बाद ड्यूटी फिर से

शुरू ना करने के कारण वादी को कोई नुक़सान नहीं हुआ है। उन्होंने कुछ अन्य तर्क भी लिए, जो अपील में नहीं बचते हैं। मेरे समक्ष पक्षकारों द्वारा विवाद्यक संख्या 1,3,11 और 13 पर बहस की गई है, जो इस प्रकार हैं: -

1. क्या दावा विधिवत अधिकृत व्यक्ति द्वारा दायर किया गया है ? OPP

* * * *

3. क्या वादी कानूनी रूप से प्रतिवादीगण से बँधपत्र निष्पादित करा सकता है और क्या विधि द्वारा और प्रतिवादी संख्या 1 की सेवा शर्तों द्वारा इसकी अनुमति है और, यदि नहीं, तो इसका क्या प्रभाव है ? OPP

* * *

11. क्या प्रतिवादी संख्या 1 के छुट्टी की समाप्ति के पश्चात् अपनी ड्यूटी को फिर से शुरू नहीं करने के कारण वादी को कोई नुकसान हुआ है और यदि हां, तो इसकी मात्रा क्या है? OPP

* * *

13. क्या वादी, प्रतिवादीगण से कोई राशि वसूल करने का हकदार है और यदि हां, तो उनमें से किससे?

OPP

(4) विचरण न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 1 और 3 को वादी के पक्ष में तय किया और विवाद्यक संख्या 11 और 13 को वादी के विरुद्ध तय किया। विवाद्यक संख्या 11 और 13 पर निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने दावा खारिज कर दिया। वादी इस न्यायालय के समक्ष अपील में आया है।

(5) निर्धारण के लिए जो पहला प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या वादी प्रतिवादीगण से बंधपत्र की राशि की वसूली करने का हकदार है। श्री शर्मा का तर्क है कि बंध-पत्र में उल्लिखित 45,000 रुपए की राशि एक दंडात्मक राशि नहीं है, अपितु यह पूर्व-अनुमानित नुकसान को दर्शाता है और इसलिए, वादी-अपीलार्थी भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (जिसे इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित किया

गया है) की धारा 74 के तहत इसे वसूल करने का हकदार है, । दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अपीलार्थी को कोई नुकसान नहीं हुआ है और इसलिए, वह प्रत्यर्थीगण से किसी भी राशि की वसूली करने का हकदार नहीं है।

(6) मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को काफी विस्तार से सुना है। प्रश्न का निर्धारण करने के लिए अधिनियम की धारा 74 को पढ़ना लाभप्रद होगा, जो इस प्रकार हैः -

"74. संविदा के उल्लंघन के लिए मुआवजा जहां जुर्माना निर्धारित किया गया है।

जब किसी संविदा का उल्लंघन किया जाता है, तब यदि संविदा में किसी राशि का वर्णन किया गया है जो ऐसे उल्लंघन के मामले में भुगतान के रूप में दी जाएगी या यदि संविदा में दंड के रूप में कोई अन्य शर्त शामिल है, तो उल्लंघन की शिकायत करने वाला पक्ष, चाहे उसे वास्तविक क्षति या हानि हुई है या नहीं, उचित मुआवजा जो वर्णित राशि से अधिक नहीं है या निर्धारित जुर्माना, जैसा भी मामला हो, उस पक्ष से प्राप्त करने का हकदार होगा, जिसने संविदा तोड़ा है।

स्पष्टीकरण -चूक की तारीख से बढ़े हुए ब्याज के लिए एक शर्त दंड के रूप में निर्धारित की जा सकती है।

अपवाद- जब कोई व्यक्ति कोई जमानत-बंधपत्र, मान्यता या समान प्रकृति का अन्य दस्तावेज निष्पादित करता है, या किसी कानून के प्रावधानों के तहत या केंद्र सरकार या किसी राज्य सरकार के आदेशों के तहत, किसी सार्वजनिक कर्तव्य या कार्य जिसमें जनता रुचि रखती है के प्रदर्शन के लिए कोई बंधपत्र देता है, तो वह ऐसे किसी दस्तावेज की शर्त का उल्लंघन करने पर उसमें उल्लिखित पूरी राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा।

स्पष्टीकरण-एक व्यक्ति जो सरकार के साथ संविदा करता है, वह आवश्यक रूप से कोई सार्वजनिक कर्तव्य या ऐसा कार्य करने का वादा नहीं करता है जिसमें जनता की रुचि हो।

(7) इस धारा की व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सर चुनीलाल वी. मेहता आदि बनाम सेंचुरी स्पिनिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड[1], फतेह चंद बनाम बालकिशन दास[2], और मौला बक्स बनाम भारत संघ, [3]के मामलों में की गई है।

(8) सर चुनिलाल (उपर्युक्त) के मामले में संविदा में एक खंड था कि यदि अपीलार्थी प्रतिनिधि के पद से वंचित रहता है, तो वह कंपनी से ऐसी नियुक्ति के नुकसान के लिए मुआवजे या परिनिर्धारित हर्ज़ाने के रूप में मासिक वेतन की कुल राशि जो 6,000 रुपये से कम नहीं होगी के बराबर राशि प्राप्त करने का हकदार होगा, जो अपीलार्थी उस समय की शेष अवधि के लिए और उसके दौरान कंपनी से प्राप्त करने का हकदार होता। कंपनी ने एजेंसी को समाप्त कर दिया और उसके बाद अपीलार्थी ने हर्जाने की वसूली के लिए दावा दायर किया। विद्वत विचारण न्यायाधीश ने 6,000 रुपये प्रति माह की दर से राशि की गणना करते हुए डिक्री पारित की। अनिश्चित अवधि के लिए । वादी ने सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर की। जे.आर. मुधोलकर, न्यायाधिपति ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए कहा कि परिनिर्धारित हर्ज़ाने का दावा करने का अधिकार संविदा अधिनियम की धारा 74 के तहत प्रवर्तनीय है और जहां ऐसा अधिकार मौजूद पाया जाता है, वहां वास्तव में हर्जाने का पता लगाने का कोई सवाल ही नहीं उठता है, जहां पक्षों ने जानबूझकर परिनिर्धारित हर्जाने की राशि निर्दिष्ट की है, इस बात का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि वे उसी समय यह इरादा रखते हैं कि उल्लंघन से पीड़ित पक्ष निर्दिष्ट राशि के लिए दावा ना करे और इसके बजाय उस राशि के लिए दावा करे जो उल्लंघन की तारीख पर सुनिश्चित या पता लगाने योग्य नहीं है। नतीजतन, अपील को इस टिप्पणी के बाद खारिज कर दिया गया कि अपीलार्थी को मुआवजे के रूप में 6,000 रुपये प्रति माह से अधिक कुछ भी प्राप्त करने का हकदार नहीं होना चाहिए।

(9) फतेह चंद (उपर्युक्त) के मामले में अधिनियम की धारा 74 के दायरे से निपटा गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह धारा अंग्रेजी सामान्य कानून के तहत किए गए कुछ विस्तृत

[1] A.I.R. 1962 S.C. 1314
[2] A.I.R. 1963 S.C. 1405
[3] A.I.R. 1970 S.C. 1955

परिष्करणों को समाप्त करने का प्रयास है, जिसमें परिनिर्धारित हर्जाने के भुगतान के लिए प्रावधान करने वाली शर्तों और दंड की प्रकृति में प्रावधान करने वाली शर्तों के बीच अंतर किया गया है। सामान्य कानून के तहत, पारस्परिक समझौते द्वारा निर्धारित नुकसान के वास्तविक पूर्व-आकलन को परिनिर्धारित हर्ज़ाने के रूप में एक शर्त माना जाता है और जो कि पक्षों के बीच बाध्यकारी है; संविदा के उल्लंघन को रोकने के लिए डर के रूप में अधिरोपित शर्त एक दंड है और न्यायालय इसे लागू करने से इनकार कर, पीड़ित पक्ष को केवल उचित मुआवजा देता है। विधायिका ने उल्लंघन के मामले में भुगतान की जाने वाली राशियों और जुर्माने के रूप में लगाई जाने वाली शर्तों के संबंध में एक समान सिद्धांत को लागू करके, अंग्रेजी सामान्य कानून के तहत नियमों और धारणाओं के जाल में कटौती करने का प्रयास किया है। हर्जाने के निर्धारण के संबंध में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया थाः-

> "भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 74 दो वर्गों के मामलों में हर्जाने के निर्धारण से संबंधित है (i) जहां संविदा उल्लंघन के मामले में भुगतान की जाने वाली राशि नामित करती है और (ii) जहां संविदा में दंड के रूप में कोई अन्य शर्त शामिल है।..... दंड की प्रकृति में शर्त के उल्लंघन के मामले में हर्ज़ाने का आंकलन धारा 74 के अनुसार उचित मुआवज़ा है, जो की निर्धारित दंड से अधिक नहीं होगा। संविदा के उल्लंघन के मामले में मुआवजा देने की न्यायालय की अधिकारिता अधिकतम निर्धारित को छोड़कर अनियंत्रित है; लेकिन मुआवजा उचित होना चाहिए, और यह न्यायालय पर यह कर्तव्य अधिरोपित करता है कि वह तय गए सिद्धांतों के अनुसार मुआवजा दे।इस धारा में निस्संदेह यह कहा गया है कि पीड़ित पक्ष उस पक्ष से मुआवजा प्राप्त करने का हकदार है जिसने संविदा का उल्लंघन किया है, चाहे उल्लंघन के कारण वास्तविक क्षति या नुकसान साबित हुआ हो या नहीं। इसलिए यह केवल 'वास्तविक हानि या क्षति' के प्रमाण को दरकिनार करता है; यह मुआवजे देना उचित नहीं ठहराता है जब उल्लंघन के परिणामस्वरूप कोई कानूनी क्षति नहीं हुई है क्योंकि संविदा के उल्लंघन के लिए मुआवजा उस हानि या क्षति की पूर्ति के लिए दिया जा सकता है जो स्वाभाविक रूप से वस्तुओं के सामान्य

पाठ्यक्रम में उत्पन्न हुई, या जो कि जब संविदा की गई तो पक्षकारों को पता था कि संविदा के उल्लंघन के परिणामस्वरूप होने की संभावना है।"

* * *

"इसलिए, सभी मामलों में, जहां शास्ति की प्रकृति में ऐसी कोई शर्त है कि संविदा की शर्तों के अनुसार जमा की गई राशि ज़ब्त कर ली जाएगी, जो स्पष्ट रूप से ज़ब्ती के लिए उपबंध करती है, वहां न्यायालय को ऐसी राशि का अधिनिर्णय करने की अधिकारिता है जिसे वह उचित समझता है, लेकिन जो कि संविदा में ज़ब्त करने लायक़ विनिर्दिष्ट राशि से अधिक राशि नहीं है। हम संक्षेप में भारतीय उच्च न्यायालयों द्वारा तय किए गए कुछ उदाहरणात्मक मामलों का उल्लेख कर सकते हैं जिनमें एक भिन्न दृष्टिकोण व्यक्त किया है।"

मौला बक्स (उपर्युक्त) के मामले में न्यायाधिपतिगण की निम्नलिखित टिप्पणियों को लाभ के साथ पढ़ा जाना चाहिएः

"....संविदा के उल्लंघन के प्रत्येक मामले में, उल्लंघन से पीड़ित पक्ष को डिक्री का दावा करने से पूर्व उसको हुए वास्तविक नुक़सान या क्षति को साबित करने की आवश्यकता नहीं है और न्यायालय उल्लंघन के मामले में तब भी उचित मुआवज़ा देने हेतु सक्षम है, जब संविदा की उल्लंघन के परिणामस्वरूप कोई वास्तविक नुक़सान होना साबित नहीं किया गया है। लेकिन 'वास्तविक क्षति या हानि इसके कारण हुई है या नहीं' अभिव्यक्ति का उद्देश्य विभिन्न वर्गों की संविदा को शामिल करना है जो न्यायालयों के समक्ष आती हैं। कुछ संविदा के उल्लंघन के मामले में न्यायालय के लिए उल्लंघन से उत्पन्न मुआवजे का आकलन करना असंभव हो सकता है, जबकि अन्य मामलों में मुआवजे की गणना स्थापित नियमों के अनुसार की जा सकती है। जहां न्यायालय मुआवजे का आकलन करने में असमर्थ है, वहाँ पक्षकारों द्वारा नामित राशि, यदि इसे एक वास्तविक पूर्व-अनुमान माना जाता है, को उचित मुआवजे के निर्धारण के रूप में विचार में लिया जा सकता है, लेकिन तब नहीं जब नामित राशि दंड की प्रकृति में हो। जहां धन के संदर्भ में नुकसान का निर्धारण

किया जा सकता है, मुआवजे का दावा करने वाले पक्ष को उसे हुए नुकसान को साबित करना चाहिए।"

मौला बक्स (उपर्युक्त) के मामले का अनुसरण सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य मामले भारत संघ बनाम रामपुर डिस्टिलरी एंड केमिकल कंपनी लिमिटेड[4] में किया गया था।

(10) धारा के पठन और उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियों से यह पता चलता है कि यदि किसी संविदा के पक्षकारों ने संविदा के उल्लंघन पर दंडात्मक राशि के रूप में देय होने वाली राशि का वर्णन किया है, तो दंडात्मक राशि से अधिक ना होने वाले वास्तविक नुकसान की वसूली की जा सकती है। दूसरी ओर, यदि उनके द्वारा राशि को नुकसान के निश्चित आकलन के रूप में निर्धारित किया गया है ताकि भविष्य में इसका पता लगाने में किसी भी कठिनाई से बचा जा सके, तो इस प्रकार वर्णित राशि की वसूली की जा सकती है। संविदा में जुर्माना या परिनिर्धारित क्षति शब्द का उपयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए निर्णायक कारक नहीं है कि दावे में चाही गई राशि जुर्माना या परिनिर्धारित क्षति है। प्रत्येक मामले में उस मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस तरह के प्रश्न का निर्धारण किया जाना चाहिए। आम तौर पर यह देखा जाता है कि संविदा के कुछ मामलों में न्यायालय के लिए नुकसान का अनुमान लगाना संभव नहीं है, जबकि कुछ ऐसे हैं जिनमें नुकसान की गणना प्रसिद्ध सिद्धांतों के अनुसार की जा सकती है। पहले के मामलों में, पक्षों द्वारा वर्णित राशि, यदि नुकसान के वास्तविक पूर्व-आकलन को दर्शाती है, तो इसे उचित मुआवजे के रूप में माना जा सकता है, जबकि बाद के मामलों में, नुकसान को साबित करने की आवश्यकता होती है।

(11) अब वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हैं, प्रत्यर्थी संख्या 1 स्नातकोत्तर संस्थान में सह-प्राध्यापक और नेत्र विज्ञान विभाग के प्रमुख थे। संस्थान चिकित्सा अनुसंधान कर रहा है और आम जनता के लाभ के लिए अस्पताल चला रहा है। यह सरकार का कमाई करने वाला विभाग नहीं है। दूसरी ओर, सरकार इसके रखरखाव के लिए करोड़ों रुपये खर्च कर रही है। संस्थान में, जो प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध है, उच्च

[4] A.I.R. 1973 S.C. 1098

योग्य और प्रतिष्ठित डॉक्टरों को विभागों के प्रमुखों के रूप में नियुक्त किया जाता है। यदि कोई डॉक्टर संस्थान छोड़ देता है, तो धन के संदर्भ में उसे हुए नुकसान का अनुमान लगाना संभव नहीं है। संस्थान के निदेशक डॉ. पी.एन. छुटानी ने कहा कि यह संस्थान के लिए एक बड़ा नुकसान था जब डॉ. गुप्ता छुट्टी की अवधि समाप्त होने के बाद उपस्थित नहीं हुए। वे संस्थान के प्रमुख थे और डॉ. गुप्ता के जाने के बाद संस्थान पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में गवाही देने वाले सबसे अच्छे व्यक्ति थे। उनकी गवाही का समर्थन डॉ. आई.एस. जैन द्वारा किया गया है, जो डॉ. गुप्ता के जाने के बाद नेत्र विज्ञान विभाग के प्रमुख थे। उन दोनों ने आगे कहा कि धन के संदर्भ में नुकसान का आकलन संभव नहीं था। वे प्रख्यात चिकित्सक हैं और उनके बयानों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है।

(12) यह पहले से ही देखा जा चुका है कि यदि नुकसान का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, तो समझौते में नुकसान के रूप में वर्णित राशि की वसूली की जा सकती है यदि ये वास्तविक और पूर्व-अनुमानित हैं। संस्थान के साथ डॉ. गुप्ता का जुड़ाव एक बड़ी संपत्ति थी और उनके इसे छोड़ने के बाद मुआवजे की कोई राशि नुकसान की भरपाई नहीं कर सकी। बंध-पत्र में उल्लिखित राशि भी अत्यधिक और अनुचित नहीं लगती है। इसलिए, मेरा विचार है कि 45, 000 रुपए को ग़ैर वास्तविक और पूर्व-अनुमानित नुकसान नहीं माना जा सकता है।

(13) इसी प्रकार का एक मामला न्यायालय के समक्ष (द एटलस साइकिल इंडस्ट्रीज, सोनीपत लिमिटेड बनाम श्री बी.एस. खुराना, सुपर सेल्स, इंडिया प्राइवेट लिमिटेड)[5] में आया। उस मामले में, 17 मार्च, 1954 को, पक्षों ने एक समझौते को निष्पादित किया, जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि बी.एस. खुराना छह साल की अवधि के लिए कंपनी की सेवा करेंगे, कि वह 2, 500 रुपए प्रतिभूति के रूप में कंपनी में जमा करवाएँगे और उस अवधि के दौरान सेवा छोड़ने की स्थिति में, निश्चित हर्जाने के रूप में कंपनी प्रतिभूति को जब्त करने और छह महीने के वेतन की वसूली करने की हकदार होगी। उन्होंने संविदा की अवधि के दौरान सेवा छोड़ दी। उस समय वह 830 रुपए प्रति माह कमा रहे थे। वादी ने

[5] R.S.A. 445 of 1973 (decided on 20-08-1982)

प्रतिभूति को जब्त कर लिया और परिनिर्धारित क्षति के रूप में 4,980 रुपये की वसूली के लिए दावा दायर किया। विचारण न्यायालय ने वादी के दावे को खारिज कर दिया। अपील पर, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की। द्वितीय अपील में, विद्वान न्यायाधीश ने मौला बक्स (उपर्युक्त) के मामले का अनुसरण किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि न्यायालय के लिए उल्लंघन से उत्पन्न मुआवजे का आकलन करना संभव नहीं था। इसलिए, पक्षों द्वारा वर्णित राशि एक वास्तविक पूर्व-अनुमान होने के कारण उचित मुआवजे का एकमात्र उपाय था। नतीजतन, वादी की अपील स्वीकार कर ली गई और वाद को डिक्री कर दिया गया।

(14) प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता श्री अग्रवाल ने सत्यनारायण अमोलकचंद भट्ट बनाम विट्ठल नारायण जामदार[6] और पासापुडी ब्रह्मय्या और अन्य बनाम तीगला गंगाराजू के[7] मामलों का संदर्भ दिया है। पहले मामले में, वादी और प्रतिवादी के प्रतिनिधि ने एक संविदा किया जिसके अनुसार प्रतिवादी चार महीने के भीतर 1 रुपए प्रति बैग की दर से दो हजार बैग आरा धूल की आपूर्ति करने के लिए सहमत हुआ। यह भी सहमति हुई कि यदि प्रतिवादी द्वारा संविदा का उल्लंघन किया गया, तो वह नुकसान के रूप में 1,000 रुपये का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा। विद्वान न्यायाधीश ने 1,000 रुपये की राशि पर विचार करते हुए कहा कि यह पक्षों द्वारा नुकसान का पूर्व-अनुमान नहीं था, क्योंकि 1 रुपये प्रति बैग की दर से संपूर्ण मात्रा के लिए वादी द्वारा प्रतिवादी को जो कुल कीमत देय होती, वह 2,000 रुपए होती। यदि प्रतिवादी आरा धूल के 1,999 बैग की आपूर्ति करता है और एक बैग की आपूर्ति करने में विफल रहता है, तो निस्संदेह प्रतिवादी की ओर से संविदा का उल्लंघन होगा और संविदा के तहत प्रतिवादी, वादी को मुआवजे के रूप में 1,000 रुपये का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा। यह वादी को हुए नुक़सान से पूरी तरह से असमान होगा। परिणामस्वरूप विद्वत न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि संविदा में निर्दिष्ट राशि पक्षकारों द्वारा उस नुकसान के पूर्व-आकलन के रूप में निर्धारित नहीं की गई थी, जो वादी को उल्लंघन के कारण होता, अपितु पक्षकार को

[6] A.I.R. 1959 Bombay 452
[7] A.I.R. 1963 A.P. 310

संविदा के उल्लंघन से रोकने के लिए थी। पासलपुडी ब्रह्मय्या (उपर्युक्त) के मामले में वादी और प्रतिवादीगण के बीच सेवा का संविदा था जिसके अनुसार प्रतिवादी, वादी को सेवक के रूप में सेवा करने के लिए सहमत हुए। आगे यह सहमति बनी कि यदि सेवक वर्ष में बारह दिनों से अधिक की अवधि के लिए अनुपस्थित रहते हैं, तो उनमें से एक 1 रुपया प्रति दिन का भुगतान करेगा और दूसरा 0-8-0 रुपया प्रति दिन। वे दोनों बारह दिनों से अधिक समय तक अनुपस्थित रहे और वादी ने उनसे मुक़दमे के माध्यम से 91 रुपये कुछ की राशि का दावा किया। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वादी को कोई नुकसान नहीं हुआ था और इसलिए, वह किसी भी मुआवजे का हकदार नहीं था। दोनों मामले अलग-अलग हैं और मेरे विचार से श्री अग्रवाल उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकते।

(15) यह विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3, प्रत्यर्थी संख्या 1 के प्रतिभूति थे। इसलिए, मेरा विचार है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 का दायित्व प्रत्यर्थी संख्या 1 के समान है और वे प्रत्यर्थी संख्या 1 के साथ बंध-पत्र की राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं। इस अनुसार विवाद्यक संख्या 11 और 13 तय किए जाते हैं।

(16) इस स्थिति का सामना करते हुए, श्री अग्रवाल ने विवाद्यक संख्या 1 पर विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को चुनौती दी और यह तर्क दिया कि दावा किसी सक्षम व्यक्ति द्वारा दायर नहीं किया गया था। वह यह तर्क देते हैं कि संस्थान का निदेशक दावा दायर करने के लिए अधिकृत नहीं था और इसलिए, दावे को इस आधार पर खारिज किया जाना था।

(17) मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और श्री अग्रवाल के तर्क में बल पाया है। विद्वत विचारण न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए कि दावा उचित रूप से अधिकृत व्यक्ति द्वारा दायर किया गया था, नोट, प्रदर्श पी-1 को ध्यान में रखा और यह कहा कि प्रतिवादियों के विरुद्ध दावा दायर करने के लिए निदेशक को संस्थान के प्रबंधक मण्डल के प्रस्ताव द्वारा अधिकृत किया गया था। प्रबंधक मण्डल का प्रस्ताव वादी द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था। नोट, प्रदर्श पी-1, दिनांक 6 अगस्त,

1970 का है और इस पर डॉ. डी.आर. बाली के हस्ताक्षर हैं। नोट में कहा गया है कि डॉ. गुप्ता ने जानबूझकर ड्यूटी से खुद को अनुपस्थित कर लिया था; प्रबंधक मण्डल की बैठक दिनांक 31 जुलाई, 1970 के एजेंडा आइटम संख्या 2 पर विचार करते हुए, उक्त निकाय द्वारा मामले की समीक्षा की गई और यह निर्णय लिया गया कि डॉ. गुप्ता के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही शुरू की जानी चाहिए। नोट में यह उल्लेख नहीं है कि कार्यवाही किसे शुरू करनी थी। प्रतिवादी द्वारा विशेष रूप से आपत्ति की गई थी कि दावा विधिवत अधिकृत व्यक्ति द्वारा दायर नहीं किया गया था। उस स्थिति में, यह वादी का कर्तव्य बन गया कि वह प्रबंधक मण्डल का प्रस्ताव प्रस्तुत करे। डॉ. बाली गवाही के लिए आए और कहा कि उन्हें किसी ने 31 जुलाई, 1970 की बैठक का एजेंडा लाने के लिए नहीं कहा था। हालाँकि, उन्होंने स्वीकार किया कि प्रबंधक मण्डल की बैठकों का रिकॉर्ड रखा गया था। यह नहीं दर्शाया गया है कि मूल अभिलेख खो गया था। इस स्थिति में, प्रदर्श पी-1 के आधार पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि प्रबंधक मण्डल ने प्रतिवादी के विरुद्ध वाद स्थापित करने का प्रस्ताव लिया था। इसके अतिरिक्त, नोट में भी यह उल्लेख नहीं है कि डॉ. छुटानी को दावा दायर करने के लिए अधिकृत किया गया था। यह सुस्थापित है कि कॉर्पोरेट निकाय प्रस्तावों के माध्यम से कार्य कर सकते हैं। उपर्युक्त सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखने के बाद, मेरी राय है कि दावा उचित रूप से किसी अधिकृत व्यक्ति द्वारा दायर नहीं किया गया है और इसे इस आधार पर खारिज किया जा सकता है।

(18) श्री शर्मा ने इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह आग्रह करना चाहा कि संस्थान द्वारा दिनांक 22 सितंबर, 1973 के प्रस्ताव प्रदर्श पी-16 के ज़रिए निदेशक के कार्य को अनुमोदित और अपनाया गया था। वह यह तर्क देते हैं कि अनुसमर्थन को देखते हुए, दावे का आरम्भ भले ही शुरुआत में अमान्य था, परन्तु बाद में वह वैध हो गया।

(19) यह बिंदु विद्वत विचारण न्यायालय के समक्ष उठाया गया था और उसके द्वारा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि अनुसमर्थन परिसीमा की अवधि समाप्त होने के पश्चात् किया गया था और इसलिए, इसे वैध अनुसमर्थन नहीं कहा जा सकता था। श्री शर्मा यह नहीं दर्शा पाए हैं कि विद्वत

विचारण न्यायालय का निष्कर्ष गलत था। न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण (द पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल रिसर्च एंड एजुकेशन बनाम श्री वेद प्रकाश मेहता, आदि)[8] के मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों द्वारा समर्थित है। विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि इस सिद्धांत के साथ कोई विवाद नहीं है कि एक अभिकर्ता अपने प्रतिनिधि की अनधिकृत कार्रवाई की पुष्टि कर सकता है, परन्तु कानून का एक और सुस्थापित सिद्धांत है कि अनुसमर्थन, जहां तक अनुसमर्थन के कानून का संबंध है, पूर्वव्यापी नहीं हो सकता है। उपर्युक्त दृष्टिकोण में, उन्होंने (नगरपालिका समिति, लुधियाना बनाम सुरिंदर कुमार)[9] के निर्णय पर भरोसा किया। लेटर्स पेटेंट पीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुसमर्थन परिसीमा के भीतर होना चाहिए था और यदि अनुसमर्थन परिसीमा के पश्चात् था, तो यह परिसीमा के प्रतिबंध को ठीक नहीं कर सकता था। मैं उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ सम्मानजनक सहमति में हूं। इसलिए, वर्तमान मामले में अनुसमर्थन, परिसीमा के पश्चात् होने के कारण किसी अनधिकृत व्यक्ति द्वारा वाद की स्थापना के दोष को ठीक नहीं करता है। नतीजतन, मैं विवाद्यक संख्या 1 पर विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलट देता हूं।

(20 श्री अग्रवाल ने इसके पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यक संख्या 3 पर दिए गए निष्कर्ष को चुनौती दी, जो कि उसके द्वारा वादी के पक्ष में पाया गया। उन्होंने तर्क दिया कि अपीलार्थी पंजाब सिविल सेवा नियमों के तहत प्रत्यर्थीगण से बंध-पत्र निष्पादित नहीं करा सका, जो कि प्रत्यर्थी संख्या 1 पर लागू थे।

(21) विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क से मैं प्रभावित नहीं हूं। वादी के प्रबंधक मण्डल ने प्रतिवादी को बंध-पत्र निष्पादित करने के लिए कहा। सामान्य कानून के तहत किसी नियोक्ता द्वारा अपने कर्मचारी से इस तरह का बंध-पत्र प्राप्त करने पर कोई रोक नहीं है। यहां तक कि सिविल सेवा नियमों के तहत भी, अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 से पंजाब सिविल सेवा नियम के खंड I, भाग I के नियम 1.3 के अधीन बंध-पत्र लिया जा सकता था। उक्त नियम में यह प्रावधान किया गया है कि जब सक्षम प्राधिकारी की

[8] R.S.A. 1485 of 1972 (decided on 24-08-1973)
[9] L.P.A. 568 of 1970 (decided on 23-09-1971)

राय में, सेवा की किसी भी शर्त के संबंध में नियमों से विपरीत किसी विशेष प्रावधान की आवश्यकता होती है, तो प्राधिकरण उस संबंध में कर्मचारी के साथ एक समझौता कर सकता है। उपर्युक्त नियम को ध्यान में रखते हुए, मेरे विचार में, प्रबंधक मण्डल, प्रत्यर्थी संख्या 1 को वादी के पक्ष में बंधपत्र निष्पादित करने के लिए कह सकता है। उपर्युक्त दृष्टिकोण में, मुझे श्री सुरजीत सिंह बनाम श्री सोम दत्त आदि[10] के मामले से समर्थन मिलता है, जिसमें उक्त नियम की व्याख्या की गई थी और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक सक्षम प्राधिकारी, सेवा की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, एक समझौता कर सकता है जो नियमों के विपरीत भी हो सकता है। नतीजतन, मैं विद्वान अधिवक्ता के तर्क को अस्वीकार करता हूं।

(22) परिणामतः, मुझे इस अपील में कोई योग्यता नहीं मिलती है, परन्तु भिन्न कारणों से। नतीजतन, मैं ख़र्चे के बारे में कोई आदेश दिए बिना इसे खारिज कर देता हूं।

अस्वीकरण :-

स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय अपीलार्थी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

ऋषभ अग्रवाल
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी, हरियाणा।
UID NO.:- HR0675

[10] 1973(1) S.L.R. 452